MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

Buddhist Yogācāra and Aṣṭāṅga Yoga: Principles and Practice

बौद्ध योगाचार एवं अष्टाङ्गयोग : तत्त्व और व्यवहार

Nityananda Das Adhikari

Research Scholar
Dr. C.V Raman University, Bilaspur, Chhattisgrah, India.
Email: nityanandadasadhikari5@gmail.com
Page No: 125-141

Abstract: *The history of Indian yogic practice is not confined to any single philosophy, tradition, or text. Although the Pātañjala Yogasūtra is a major work of Indian Yoga, systematic practices concerning ethical restraint, sense-control, meditative posture, mindfulness of breathing, concentration, meditation, samādhi, cessation, and liberating wisdom are independently attested in early Buddhist literature. Besides the Pāli Nikāyas, the Chinese Āgamas, Gāndhārī manuscripts, Buddhist Sanskrit texts, and Tibetan translations preserve important evidence for this multilingual Buddhist contemplative tradition.*

This study gives methodological priority to Buddhist primary sources and subsequently compares relevant passages with the Pātañjala Yogasūtra. It examines the Noble Eightfold Path and Aṣṭāṅgayoga; Śīla and Yama; Ānāpānasati and Prāṇāyāma; Indriyasaṃvara and Pratyāhāra; mindfulness and Smṛti; concentration and Dhāraṇā; Jhāna and Dhyāna; Samādhi; Prajñā and Vivekakhyāti; Nirodha and Cittavṛttinirodha; as well as karma, kleśa, bīja, Ālayavijñāna, Dharmamegha, Nirvāṇa, and Kaivalya. The study identifies significant functional parallels while emphasizing fundamental metaphysical differences. Therefore, shared Śramaṇa contexts, parallel development, Buddhist precedents, inter-philosophical interaction, selective appropriation, and reinterpretation require case-specific evidential examination.

Keywords: *Buddhist Yogācāra, Eightfold Path, Aṣṭāṅgayoga, Śīla, Mindfulness, Ānāpānasati, Jhāna, Samādhi, Prajñā, Nirvāṇa, Kaivalya.*

प्रस्तावना

भारतीय योग-साधना के इतिहास में बौद्ध और पातञ्जल परम्पराओं का सम्बन्ध एक जटिल ऐतिहासिक और दार्शनिक प्रश्न है। दोनों परम्पराएँ नैतिक अनुशासन को महत्त्व देती हैं। दोनों इन्द्रियों और चित्त के संयम की चर्चा करती हैं। दोनों ध्यान और समाधि को उच्च साधनात्मक अवस्था मानती हैं। दोनों मानसिक क्लेशों को मुक्ति में बाधक मानती हैं। फिर भी दोनों की अन्तिम तत्त्वमीमांसा समान नहीं है।[1]

इस विषय के अध्ययन में एक प्रमुख पद्धतिगत कठिनाई यह रही है कि प्रायः पातञ्जल अष्टाङ्गयोग के आठ अङ्गों को पहले स्वीकार करके बौद्ध साहित्य में उनके समान तत्त्व खोजे जाते हैं। इससे बौद्ध साधना की अपनी स्वतंत्र संरचना गौण हो सकती है। बौद्ध साहित्य स्वयं आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, शील–समाधि–प्रज्ञा, चार स्मृत्युपस्थान, चार सम्यक् प्रयास, पाँच इन्द्रिय, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग और चार ज्ञानों जैसी व्यवस्थित साधना-रचनाएँ प्रस्तुत करता है।

वर्तमान अध्ययन में इसलिए क्रम को उलटा रखा गया है। पहले बौद्ध प्राथमिक पाठ को लिया गया है। उसके अपने बौद्ध सन्दर्भ में उसका अर्थ समझा गया है। जहाँ सम्भव है, पालि पाठ के चीनी, संस्कृत अथवा तिब्बती समानान्तरों को भी देखा गया है। इसके बाद पातञ्जल *योगसूत्र* के सम्बन्धित सूत्र को रखकर दोनों के बीच समानता और भिन्नता का परीक्षण किया गया है।

यहाँ 'बौद्ध योगाचार' पद का प्रयोग भी सावधानीपूर्वक किया गया है। व्यापक अर्थ में यह बौद्ध योग-साधना और योग के आचरण की परम्परा को व्यक्त कर सकता है। विशिष्ट ऐतिहासिक अर्थ में योगाचार महायान बौद्ध दर्शन और साधना की एक विकसित परम्परा है, जिसका विशाल साहित्य *योगाचारभूमि* में मिलता है। दोनों अर्थों को बिना भेद के एक करना उचित नहीं है।

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

इसी प्रकार 'पूर्ववर्ती' और 'स्रोत' को समान नहीं माना गया है। यदि कोई साधना बौद्ध साहित्य में पहले प्रमाणित होती है, तो उससे उस साधना की बौद्ध परम्परा में कालगत पूर्वता प्रमाणित हो सकती है। इससे यह स्वतः सिद्ध नहीं होता कि पातञ्जल रचनाकार ने उसी बौद्ध ग्रन्थ से प्रत्यक्ष ग्रहण किया। प्रत्यक्ष अथवा सम्भावित ग्रहण सिद्ध करने के लिए कालक्रम के साथ शब्दावली, संकल्पनात्मक संरचना, कार्य, ऐतिहासिक सम्पर्क और अर्थगत परिवर्तन को भी देखना आवश्यक है।[2]

शोध-अंतराल (Research Gap)

- बौद्ध और पातञ्जल योग की तुलना में प्रायः पातञ्जल अष्टाङ्गयोग को मानक बनाकर बौद्ध सामग्री को उसके अनुसार व्यवस्थित किया जाता है। इससे बौद्ध साधना की अपनी स्वतंत्र वर्गीकरण-पद्धति छिप सकती है। वर्तमान अध्ययन पहले बौद्ध संरचना को उसके अपने प्राथमिक स्रोतों में स्थापित करता है और उसके बाद पातञ्जल अष्टाङ्गयोग से उसकी तुलना करता है।
- देशी और वैदेशिक बौद्ध पाठ-परम्पराओं के संयुक्त अध्ययन से सम्बन्धित है। पालि निकायों को अकेले पढ़ने के स्थान पर जहाँ सम्भव है वहाँ चीनी आगम, संस्कृत खण्ड और तिब्बती समानान्तरों का उपयोग किया गया है। *महाचत्तारीसक-सुत्त* (Mahācattārīsaka-sutta) के मामले में पालि पाठ के अतिरिक्त संस्कृत खण्ड, चीनी *मध्यम-आगम* (Madhyama-āgama) 189 और तिब्बती समानान्तर उपलब्ध हैं। इन पाठों में साझा सामग्री भी है और वास्तविक पाठभेद भी हैं।[3]
- प्रमाण की श्रेणी से सम्बन्धित है। 'अहिंसा', 'ध्यान' अथवा 'समाधि' जैसे व्यापक पदों का दो परम्पराओं में मिलना प्रत्यक्ष ग्रहण सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है। ये साझा भारतीय श्रमण परिवेश में भी विकसित हो सकते हैं। इसके विपरीत धर्ममेघ (Dharmamegha) जैसा अपेक्षाकृत विशिष्ट रूपक, जिसका बौद्ध महायान और योगाचार में विस्तृत विकास मिलता है तथा जो पातञ्जल ग्रन्थ में परिवर्तित अर्थ में आता है, अधिक गहन अन्तर्पाठीय सम्बन्ध की सम्भावना उत्पन्न करता है।[4]
- साधनात्मक समानता और तत्त्वमीमांसात्मक समानता को अलग करने का है। दो परम्पराएँ समान अथवा तुलनीय ध्यान-विधियों का उपयोग कर सकती हैं, लेकिन आत्मा, जगत और मुक्ति के विषय में भिन्न सिद्धान्त स्वीकार कर सकती हैं। बौद्ध अनात्म और पातञ्जल पुरुष इसका स्पष्ट उदाहरण हैं।
- कालगत पूर्वता को प्रत्यक्ष ग्रहण से अलग करने का है। वर्तमान अध्ययन में प्रत्येक प्रमुख समानता को पाँच सम्भावनाओं में जाँचा गया है—साझा श्रमण परिवेश, स्वतंत्र समानान्तर विकास, बौद्ध पूर्वरूप, चयनात्मक ग्रहण और तत्त्वमीमांसात्मक पुनर्व्याख्या।

यही इस अध्ययन की प्रमुख मौलिकता है। यह केवल समानताओं की सूची प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि समानताओं के अलग-अलग ऐतिहासिक प्रमाण-मूल्य को निर्धारित करने का प्रयास करता है।

शोध के उद्देश्य

- इस शोध का प्रथम उद्देश्य प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में योग-सदृश साधनात्मक तत्त्वों को उनकी अपनी बौद्ध संरचना में पहचानना है।
- दूसरा उद्देश्य पालि, बौद्ध-संस्कृत, गांधारी, चीनी और तिब्बती पाठ-परम्पराओं के आधार पर बौद्ध साधना के बहुभाषिक स्वरूप को समझना है।
- तीसरा उद्देश्य बौद्ध प्राथमिक पाठ को पहले रखकर उसके सामने पातञ्जल अष्टाङ्गयोग के सम्बन्धित अङ्ग का तुलनात्मक अध्ययन करना है।
- चौथा उद्देश्य प्रत्येक विषय में सादृश्य और वैसादृश्य दोनों को स्पष्ट करना है।
- पाँचवाँ उद्देश्य साधनात्मक समानता को तत्त्वमीमांसात्मक अभिन्नता मानने से बचना है।

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

- छठा उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि किन मामलों को साझा श्रमण परिवेश से समझा जा सकता है और किन विशिष्ट मामलों में ग्रहण अथवा पुनर्व्याख्या की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक मजबूत है।

1.अष्टाङ्गिक मार्ग और पातञ्जल अष्टाङ्गयोग

बौद्ध धर्म में आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है। इसके आठ अङ्ग हैं—सम्यक् दृष्टि (Sammādiṭṭhi), सम्यक् संकल्प (Sammāsaṅkappa), सम्यक् वाणी (Sammāvācā), सम्यक् कर्मान्त (Sammākammanta), सम्यक् आजीविका (Sammāājīva), सम्यक् प्रयास (Sammāvāyāma), सम्यक् स्मृति (Sammāsati) और सम्यक् समाधि (Sammāsamādhi)।[5]

इस सूची का महत्त्व केवल आठ संख्या में नहीं है। इसमें नैतिक आचरण, ज्ञान, मानसिक प्रयास, स्मृति और समाधि एक ही मुक्ति-पथ के अंग हैं। सम्यक् समाधि को शेष मार्ग से अलग करके नहीं समझा जाता।

महाचत्तारीसक-सुत्त (Mahācattārīsaka-sutta) में सम्यक् दृष्टि, सम्यक् प्रयास और सम्यक् स्मृति के परस्पर सम्बन्ध पर विशेष बल मिलता है। इससे बौद्ध साधना का एक समन्वित मानसिक ढाँचा सामने आता है।[6]

इसका चीनी समानान्तर *मध्यम-आगम* (Madhyama-āgama) 189 में संरक्षित है। संस्कृत खण्ड और तिब्बती समानान्तर भी इसके पाठ-इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। तुलनात्मक अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि पालि पाठ में उपलब्ध कुछ विकसित व्याख्याएँ चीनी और तिब्बती समानान्तरों में अनुपस्थित हैं। अतः वर्तमान सभी पाठ-स्तरों को एक ही ऐतिहासिक स्तर का मानना उचित नहीं है।[7]

अब पातञ्जल *योगसूत्र* 2.29 देखें—

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।"

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आठ अङ्ग हैं।[8]

दोनों व्यवस्थाओं में आठ-अङ्गीय क्रम का सादृश्य है। दोनों क्रमिक साधना-पथ हैं। दोनों में मानसिक अनुशासन उच्चतर साधनात्मक अवस्था की ओर ले जाता है। दोनों में समाधि को उच्च स्थान प्राप्त है।

किन्तु दोनों की वास्तविक सूची समान नहीं है। बौद्ध मार्ग में सम्यक् दृष्टि, सम्यक् आजीविका और सम्यक् स्मृति स्वतंत्र अङ्ग हैं। पातञ्जल अष्टाङ्गयोग में आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार स्वतंत्र अङ्ग हैं।

अतः केवल आठ संख्या के आधार पर बौद्ध आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग से पातञ्जल अष्टाङ्गयोग का प्रत्यक्ष ग्रहण सिद्ध नहीं किया जा सकता। यहाँ पूर्ववर्ती अष्टाङ्गीय बौद्ध मुक्ति-पथ का प्रमाण अवश्य है, पर प्रत्यक्ष पाठीय निर्भरता के लिए अतिरिक्त प्रमाण आवश्यक हैं।

2.बौद्ध शील और पातञ्जल यम

बौद्ध साधना में शील मानसिक विकास की आधारभूमि है। प्राणातिपात से विरति (Pāṇātipātā veramaṇī), अदत्तादान से विरति (Adinnādānā veramaṇī), काममिथ्याचार से विरति (Kāmesu micchācārā veramaṇī) और मिथ्यावचन से विरति (Musāvādā veramaṇī) बौद्ध नैतिक अनुशासन के प्रमुख रूप हैं।[9]

इनका उद्देश्य केवल सामाजिक नैतिकता स्थापित करना नहीं है। हिंसा, चोरी, असत्य और असंयम मानसिक अशान्ति उत्पन्न करते हैं। शील साधक को ऐसी मानसिक स्थिति प्रदान करता है जिसमें ध्यान और समाधि विकसित हो सकें।

पातञ्जल *योगसूत्र* 2.30 कहता है—

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।"

अहिंसा और प्राणातिपात-विरति में स्पष्ट कार्यगत सादृश्य है। अस्तेय और अदत्तादान-विरति भी समान नैतिक क्षेत्र में आते हैं। सत्य और मिथ्यावचन-विरति का सम्बन्ध स्पष्ट है। बौद्ध भिक्षु-जीवन का ब्रह्मचर्य और पातञ्जल ब्रह्मचर्य भी कार्यगत

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

रूप से तुलनीय हैं।[10]

किन्तु दोनों पाँच-सदस्यीय सूचियाँ समान नहीं हैं। पातञ्जल अपरिग्रह का बौद्ध पञ्चशील में ठीक उसी प्रकार स्वतंत्र स्थान नहीं है। दूसरी ओर बौद्ध पञ्चशील के पाँचवें नियम का पाँच यमों में ठीक वही समकक्ष नहीं मिलता।

अतः यहाँ प्रबल नैतिक सादृश्य है, किन्तु पूर्ण पाठीय समानता नहीं है।

3.मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा

बौद्ध साधना में मैत्री (Mettā), करुणा (Karuṇā), मुदिता (Muditā) और उपेक्षा (Upekkhā) चार महत्त्वपूर्ण मानसिक भावनाएँ हैं। *करणीयमेत्त-सुत्त* (Karaṇīyametta-sutta) में कहा गया है—

"सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता।"

(Sukhino vā khemino hontu, sabbe sattā bhavantu sukhitattā.)

अर्थात् सभी प्राणी सुखी और सुरक्षित हों।[11]

आगे साधक को समस्त संसार के प्रति अपरिमित मैत्री विकसित करने का निर्देश मिलता है। इस प्रकार अहिंसा केवल किसी को क्षति न पहुँचाने की निषेधात्मक नीति नहीं रहती। वह सकारात्मक सार्वभौमिक मैत्री में विकसित होती है।

पातञ्जल *योगसूत्र* 1.33 कहता है—

"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।"

यहाँ मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—चारों एक साथ आते हैं।

यह समानता उल्लेखनीय है। फिर भी बौद्ध परम्परा में चार ब्रह्मविहार विस्तृत और स्वतंत्र भावना-साधनाएँ हैं। *योगसूत्र* 1.33 में इनका तत्काल प्रयोजन चित्तप्रसादन है।

अतः शब्दगत और कार्यगत सादृश्य मजबूत है, लेकिन साधनात्मक वर्गीकरण समान नहीं है।

4.बौद्ध सन्तोष और पातञ्जल नियम

करणीयमेत्त-सुत्त में कहा गया है—

"सन्तुस्सको च सुभरो च।"

(Santussako ca subharo ca.)

अर्थात् साधक सन्तुष्ट और सरलतापूर्वक पोषित होने वाला हो।[12]

बौद्ध श्रमण जीवन में सन्तोष और अल्पेच्छता का महत्त्व है। कम बाह्य आकांक्षाएँ चित्त को साधना के लिए अधिक स्वतंत्र बनाती हैं।

पातञ्जल *योगसूत्र* 2.32 कहता है—

"शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।"

सन्तोष दोनों में स्पष्ट समान तत्त्व है। शौच और तप जैसे विषयों से भी आंशिक कार्यगत तुलना सम्भव है।

किन्तु ईश्वरप्रणिधान निर्णायक वैसादृश्य है। बुद्धानुस्मृति अथवा बुद्ध, धर्म और संघ की शरण को पातञ्जल ईश्वरप्रणिधान का समानार्थक नहीं कहा जा सकता।[13]

5.ध्यानोपयोगी आसन और पातञ्जल आसन

बौद्ध ध्यान-साहित्य में बैठने की विधि का स्पष्ट निर्देश मिलता है। *आनापानसति-सुत्त* (Ānāpānasati-sutta) में कहा गया है—

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

"पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं कायं पणिधाय..."

(Pallaṅkaṃ ābhujitvā, ujuṃ kāyaṃ paṇidhāya...)

अर्थात् पैर मोड़कर बैठते हुए शरीर को सीधा स्थापित करना।[14]

यहाँ आसन स्वयं अन्तिम साधना नहीं है। शरीर को ऐसी स्थिर अवस्था में रखा जाता है जिसमें स्मृति और ध्यान विकसित हो सकें।

पातञ्जल *योगसूत्र* 2.46 कहता है—

"स्थिरसुखमासनम्।"

दोनों में स्थिर ध्यानोपयोगी शरीर का सादृश्य है। बौद्ध सूत्र बैठने की ठोस विधि बताता है, जबकि पातञ्जल सूत्र आसन की गुणात्मक परिभाषा देता है।

अतः बौद्ध साहित्य में पातञ्जल सूत्र से पूर्व ध्यानोपयोगी स्थिर शरीर-विन्यास का प्रमाण मिलता है। फिर भी इसे बाद के आसन-प्रधान योग की विस्तृत मुद्राओं के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

6.आनापानसति और प्राणायाम

बौद्ध श्वास-साधना का प्रमुख प्रारम्भिक स्रोत *आनापानसति-सुत्त* है। इसमें कहा गया है—

"दीघं वा अस्ससन्तो 'दीघं अस्ससामी'ति पजानाति..."

(Dīghaṃ vā assasanto 'dīghaṃ assasāmī'ti pajānāti...)

अर्थात् दीर्घ श्वास लेते समय साधक जानता है कि वह दीर्घ श्वास ले रहा है।[15]

इसके बाद लघु श्वास का ज्ञान आता है। साधक सम्पूर्ण शरीर के अनुभव का प्रशिक्षण करता है। फिर शारीरिक संस्कार को शान्त करने की साधना करता है। आगे यही प्रक्रिया वेदना, चित्त, अनित्यता, विराग, निरोध और परित्याग से जुड़ती है।

इससे स्पष्ट है कि बौद्ध श्वास-साधना केवल शारीरिक श्वसन-व्यायाम नहीं है। यह स्मृति, चित्त-शमन और प्रज्ञा की व्यापक साधना का अंग है।

पातञ्जल *योगसूत्र* 2.49 कहता है—

"तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।"

आगे *योगसूत्र* 2.50 बाह्य, आभ्यन्तर और स्तम्भवृत्ति की चर्चा करता है।[16]

सादृश्य यह है कि दोनों परम्पराएँ श्वास को मानसिक साधना से जोड़ती हैं। दोनों में श्वास और चित्त का व्यावहारिक सम्बन्ध है।

वैसादृश्य यह है कि आनापानसति (Ānāpānasati) में श्वास के प्रति स्मृतिपूर्वक जागरूकता और शमन प्रमुख है। पातञ्जल प्राणायाम (Prāṇāyāma) में श्वास–प्रश्वास की गति और उसके नियमन की अलग तकनीकी संरचना है।

अतः आनापानसति को प्राणायाम कहना उचित नहीं है। अधिक सावधान निष्कर्ष यह है कि श्वास-केन्द्रित ध्यान-साधना बौद्ध साहित्य में स्वतंत्र रूप से प्रमाणित है, जबकि पातञ्जल योग में श्वास-साधना अलग तकनीकी रूप ग्रहण करती है।

7.इन्द्रियसंवर और प्रत्याहार

प्रारम्भिक बौद्ध साधना में इन्द्रियसंवर (Indriyasaṃvara) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *सामञ्ञफल-सुत्त* (Sāmaññaphala-sutta) में कहा गया है—

"चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही..."

(Cakkhunā rūpaṃ disvā na nimittaggāhī hoti nānubyañjanaggāhī...)

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

अर्थात् रूप को देखकर साधक ऐसे संकेत और विवरण ग्रहण नहीं करता जिनसे अकुशल मानसिक अवस्थाएँ बढ़ें।[17]

इसका अर्थ आँख बन्द करना अथवा संसार से भागना नहीं है। विषय सामने आता है, लेकिन उसके प्रति चित्त की प्रतिक्रिया अनुशासित होती है।

पातञ्जल *योगसूत्र* 2.54 कहता है—

"स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।"

दोनों में इन्द्रिय-विषयों के कारण होने वाले मानसिक विक्षेप को कम करने का सादृश्य है।

किन्तु बौद्ध इन्द्रियसंवर विषय-संपर्क के समय प्रतिक्रिया के अनुशासन पर बल देता है। पातञ्जल प्रत्याहार इन्द्रियों के विषयों से असम्प्रयोग और चित्त के स्वरूपानुकरण की अलग मनोवैज्ञानिक संरचना प्रस्तुत करता है।[18]

अतः यहाँ मजबूत कार्यगत सादृश्य है, लेकिन पूर्ण पारिभाषिक समानता नहीं है।

8.सम्यक् स्मृति : एक प्रमुख संरचनात्मक वैसादृश्य

बौद्ध आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग में सम्यक् स्मृति (Sammāsati) स्वतंत्र अङ्ग है। *सतिपट्ठान-सुत्त* (Satipaṭṭhāna-sutta) में शरीर, वेदना, चित्त और धर्म चार प्रमुख स्मृत्युपस्थान हैं।[19]

यह व्यवस्था बौद्ध ध्यान के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साधक शरीर को शरीर के रूप में, वेदना को वेदना के रूप में, चित्त को चित्त के रूप में और मानसिक धर्मों को मानसिक धर्मों के रूप में देखता है।

इस शिक्षा का चीनी पाठ-साक्ष्य भी महत्त्वपूर्ण है। पालि MN 10 के साथ चीनी *मध्यम-आगम* (Madhyama-āgama) 98 और अन्य समानान्तर स्मृत्युपस्थान की अलग संप्रेषण-परम्पराओं को संरक्षित करते हैं।

इन पाठों में मूल चार-स्मृत्युपस्थान संरचना साझा है, किन्तु सभी उपविभाग समान नहीं हैं। यह पाठ-विकास का प्रमाण है।

पातञ्जल अष्टाङ्गयोग में स्मृति स्वतंत्र अङ्ग नहीं है। *योगसूत्र* स्मृति को अन्य प्रसंग में स्वीकार करता है, पर उसे अष्टाङ्ग में सम्यक् स्मृति जैसा पृथक् स्थान नहीं देता।[20]

यह दोनों आठ-अङ्गीय व्यवस्थाओं के बीच एक निर्णायक संरचनात्मक वैसादृश्य है।

9.चित्तैकाग्रता, शमथ और धारणा

बौद्ध साधना में चित्त की एकाग्रता और शमथ (Śamatha) मानसिक विक्षेप को शान्त करने से सम्बन्धित हैं। परवर्ती बौद्ध योगाचार में शमथ और विपश्यना (Vipaśyanā) की संयुक्त साधना विस्तृत रूप ग्रहण करती है।

पातञ्जल *योगसूत्र* 3.1 कहता है—

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।"

अर्थात् चित्त को किसी निश्चित देश में बाँधना धारणा है।

दोनों में चित्त को भटकाव से निकालकर किसी विषय पर स्थिर करने का कार्यगत साम्य है।

किन्तु बौद्ध आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग में 'धारणा' इसी नाम से स्वतंत्र अङ्ग नहीं है। अतः समान मानसिक कार्य के बावजूद दोनों का वर्गीकरण अलग है।

10.चार बौद्ध झान और पातञ्जल ध्यान

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में चार झान (Jhānas) की सुविकसित परम्परा है। साधक कामनात्मक और अकुशल मानसिक अवस्थाओं से अलग होकर प्रथम झान में प्रवेश करता है। इसके बाद क्रमशः मानसिक गतिविधियाँ सूक्ष्म होती जाती हैं। चतुर्थ

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

ज्ञान गहरी समता और शुद्ध स्मृति से सम्बन्धित है।[21]

इससे स्पष्ट है कि क्रमिक ध्यान-अवशोषण की व्यवस्थित परम्परा बौद्ध साहित्य में स्वतंत्र रूप से विकसित थी।

पातञ्जल *योगसूत्र* 3.2 कहता है—

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।"

इसके बाद 3.3 में कहा गया है—

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।"

इस प्रकार पातञ्जल व्यवस्था में धारणा, ध्यान और समाधि क्रमिक आन्तरिक साधना बनते हैं।[22]

बौद्ध ज्ञान और पातञ्जल ध्यान में क्रमिक मानसिक स्थिरता का कार्यगत साम्य है।

किन्तु चार बौद्ध ज्ञानों को पातञ्जल धारणा–ध्यान–समाधि के साथ एक-एक करके मिलाना उचित नहीं है। चार ज्ञान बौद्ध वर्गीकरण हैं और धारणा–ध्यान–समाधि पातञ्जल वर्गीकरण है।

11.सम्यक् समाधि और पातञ्जल समाधि

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का आठवाँ अङ्ग सम्यक् समाधि (Sammāsamādhi) है। समाधि बौद्ध मुक्ति-पथ के मूल ढाँचे में स्थित है।[23]

महाचत्तारीसक-सुत्त सम्यक् समाधि को अन्य मार्गाङ्गों के साथ जोड़ता है। इसका चीनी और तिब्बती समानान्तर भी उपलब्ध है। अतः समाधि का मार्ग-सापेक्ष बौद्ध प्रयोग अलग संप्रेषण-परम्पराओं में संरक्षित है।

पातञ्जल योग भी समाधि को अष्टाङ्गयोग का अंतिम अङ्ग बनाता है।

दोनों में समाधि उच्च मानसिक उपलब्धि है। दोनों में साधारण विक्षिप्त चित्त से उच्चतर स्थिर अवस्था की ओर गति है।

किन्तु बौद्ध सम्यक् समाधि सम्यक् दृष्टि, सम्यक् प्रयास और सम्यक् स्मृति के साथ निर्वाणगामी मार्ग का अंग है। पातञ्जल समाधि विवेकख्याति और अन्ततः कैवल्य की ओर स्थित है।

अतः समान पद अलग मुक्ति-दर्शन में कार्य करता है।

12.प्रज्ञा और विवेकख्याति

बौद्ध साधना में समाधि अंतिम लक्ष्य नहीं है। प्रज्ञा (Prajñā) आवश्यक है। साधक अनित्य, दुःख, अनात्म, चार आर्यसत्य और प्रतीत्यसमुत्पाद को यथाभूत समझता है।

इसका अर्थ है कि केवल मानसिक एकाग्रता मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। चित्त की स्थिरता को मुक्तिकारी ज्ञान की दिशा में प्रयुक्त करना आवश्यक है।

पातञ्जल योग में विवेकख्याति (Vivekakhyāti) मुक्तिकारी ज्ञान का कार्य करती है। पुरुष और प्रकृति की भिन्नता का विवेक कैवल्य की दिशा में निर्णायक है।

दोनों में यह महत्वपूर्ण सादृश्य है कि समाधि के साथ मुक्तिकारी ज्ञान आवश्यक है।

किन्तु दोनों के ज्ञान का विषय अलग है। बौद्ध प्रज्ञा किसी शाश्वत पुरुष का ज्ञान नहीं कराती। पातञ्जल विवेकख्याति पुरुष और प्रकृति की भिन्नता को स्पष्ट करती है।

अतः ज्ञान का कार्य तुलनीय है, लेकिन ज्ञान की तत्त्वमीमांसात्मक विषयवस्तु भिन्न है।

13.निरोध और चित्तवृत्तिनिरोध

बौद्ध धर्म में निरोध (Nirodha) मूल मुक्तिपरक अवधारणा है। चार आर्यसत्यों में दुःखनिरोध तीसरा सत्य है।

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

प्रतीत्यसमुत्पाद के प्रतिलोम क्रम में कारण के निरोध से परिणाम का निरोध होता है।

इसके सामने *योगसूत्र* 1.2 का प्रसिद्ध सूत्र है—

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"

दोनों परम्पराओं में निरोध की भाषा महत्वपूर्ण है।

किन्तु बौद्ध दुःखनिरोध, बौद्ध निरोधसमापत्ति और पातञ्जल चित्तवृत्तिनिरोध को एक नहीं करना चाहिए।[24]

दुःखनिरोध दुःख की कारण-प्रक्रिया के अन्त से जुड़ा है। निरोधसमापत्ति विशिष्ट ध्यानात्मक उपलब्धि है। पातञ्जल चित्तवृत्तिनिरोध चित्त की वृत्तियों के निरोध से सम्बन्धित है।

इसलिए शब्दगत साम्य गहरा है, लेकिन तकनीकी कार्य समान नहीं है।

14.बौद्ध क्लेश और पातञ्जल क्लेश

बौद्ध साहित्य में अविद्या, तृष्णा, राग, द्वेष और मोह संसारिक दुःख की मानसिक प्रक्रिया के प्रमुख कारण हैं।

पातञ्जल *योगसूत्र* 2.3 कहता है—

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।"

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पाँच क्लेश हैं।[25]

अविद्या, राग और द्वेष का दोनों परम्पराओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है। दोनों मानसिक दोषों को बन्धन से जोड़ते हैं।

किन्तु पातञ्जल अविद्या का अन्तिम निराकरण पुरुष और प्रकृति के विवेक से जुड़ता है। बौद्ध अविद्या का निराकरण चार आर्यसत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद, अनित्य और अनात्म के यथाभूत ज्ञान से जुड़ता है।

इसलिए मानसिक समस्या में निकटता है, परन्तु अंतिम दार्शनिक समाधान अलग है।

15.बौद्ध योगाचार में 'योग' की स्वतंत्र परम्परा

बौद्ध-संस्कृत *श्रावकभूमि* (Śrāvakabhūmi) इस अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ 'योग' स्वयं बौद्ध साधना की भाषा में प्रयुक्त होता है।

उपलब्ध संस्कृत पाठ में योग के प्रति साधक की आकांक्षा से सम्बन्धित पाठ्यांश मिलता है—

"अहमस्मिन् योगेनार्थी…"

(Aham asmiṃ yogenārthī...)[26]

यह साक्ष्य इस धारणा को चुनौती देता है कि 'योग' शब्द केवल पातञ्जल परम्परा का तकनीकी स्वामित्व था। बौद्ध साधना-परम्परा भी योग और योगाभ्यास की अपनी शब्दावली विकसित करती है।

श्रावकभूमि में शील, ध्यान-विषय, मानसिक प्रवृत्ति, शमथ, विपश्यना और निर्वाणाभिमुख प्रशिक्षण का विस्तृत विश्लेषण मिलता है।

फिर भी पाठालोचनात्मक सावधानी आवश्यक है। उपलब्ध डिजिटल संस्कृत पाठ शुक्ल के 1973 के संस्करण पर आधारित है। किसी निर्णायक पाठ्यांश के लिए मुद्रित संस्कृत संस्करण और जहाँ उपलब्ध हो वहाँ तिब्बती तथा चीनी साक्ष्यों से पुनर्मिलान आवश्यक है।[27]

16.बोधिसत्त्वभूमि और महायानी योग-साधना

बोधिसत्त्वभूमि (Bodhisattvabhūmi) बौद्ध योगाचार में साधना के महायानी विस्तार को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

यहाँ साधना केवल व्यक्तिगत क्लेश-क्षय तक सीमित नहीं रहती। बोधिसत्त्व की प्रगति प्रज्ञा, करुणा, बोधि और सर्वसत्त्वहित से जुड़ती है।

यह पातञ्जल योग से महत्वपूर्ण वैसादृश्य उत्पन्न करता है। पातञ्जल साधना का अंतिम लक्ष्य पुरुष का कैवल्य है। बोधिसत्त्वमार्ग का उच्च आदर्श सर्वसत्त्वों के हित से अभिन्न रूप से जुड़ा है।

इसलिए ध्यान और समाधि जैसी तुलनीय तकनीकी अवधारणाओं के बावजूद साधना की नैतिक और मुक्तिशास्त्रीय दिशा अलग हो सकती है।

17.संस्कार, बीज, आलयविज्ञान और कर्माशय

बौद्ध दर्शन में कर्म और मानसिक प्रवृत्तियों की निरन्तरता का प्रश्न महत्वपूर्ण है। प्रारम्भिक बौद्ध संस्कार की अवधारणा से लेकर परवर्ती योगाचार के बीज (Bīja) और आलयविज्ञान (Ālayavijñāna) तक कारणात्मक निरन्तरता (Causal Continuity) की विभिन्न व्याख्याएँ विकसित होती हैं।

योगाचार में बीज भविष्य के अनुभव की सम्भावना से सम्बन्धित हैं। आलयविज्ञान कर्म-संस्कारों की निरन्तरता की व्याख्या में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पातञ्जल योग में संस्कार, कर्माशय और विपाक की अपनी व्यवस्था है। पूर्व कर्म और संस्कार भविष्य के अनुभवों को प्रभावित करते हैं।

इसलिए दोनों परम्पराएँ एक तुलनीय दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक समस्या का सामना करती हैं।

किन्तु समान समस्या का अर्थ समान समाधान नहीं है। आलयविज्ञान को पातञ्जल कर्माशय का दूसरा नाम नहीं कहा जा सकता। आलयविज्ञान को पुरुष भी नहीं कहा जा सकता।

यहाँ सादृश्य कारणात्मक निरन्तरता की समस्या में है और वैसादृश्य उसके दार्शनिक समाधान में है।

18.धर्ममेघ : एक विशिष्ट अन्तर्पाठीय उदाहरण

धर्ममेघ (Dharmamegha) सामान्य 'ध्यान' अथवा 'समाधि' की अपेक्षा अधिक विशिष्ट तुलनात्मक उदाहरण है।

बौद्ध महायान में धर्ममेघ उच्च बोधिसत्त्व उपलब्धि से जुड़ता है। *दशभूमिकसूत्र* (Daśabhūmikasūtra) में दसवीं भूमि धर्ममेघा (Dharmameghā) है। *बोधिसत्त्वभूमि* में भी धर्ममेघ का विकसित रूपक मिलता है।[28]

बोधिसत्त्वभूमि के धर्ममेघ-विवेचन में पूर्ण बोधिसत्त्वमार्ग, सद्धर्म की वर्षा, क्लेश-रज का शमन और कुशलमूल-रूपी शस्य की वृद्धि जैसे रूपक आते हैं। इस कारण धर्ममेघ केवल समाधि का नाम नहीं रहता। वह उच्च बोधिसत्त्व अवस्था का विकसित रूपक बनता है।

अब पातञ्जल *योगसूत्र* 4.29 देखें—

"प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः।"[29]

यहाँ धर्ममेघ पातञ्जल विवेकख्याति और समाधि की व्यवस्था के भीतर आता है।

समान पद के बावजूद अर्थ का केन्द्र बदल गया है। बौद्ध महायान में धर्ममेघ बोधिसत्त्व की उच्च अवस्था और धर्मवृष्टि से जुड़ता है। पातञ्जल योग में यह विवेकख्याति की दिशा में धर्ममेघसमाधि बन जाता है।

ओ'ब्रायन-कोप (O'Brien-Kop) ने इस समानता का विस्तार से अध्ययन किया है। उनके विश्लेषण में बौद्ध योगाचार और प्रारम्भिक महायान में धर्ममेघ का अधिक विकसित प्रयोग मिलता है तथा पातञ्जल पाठ में उसके ग्रहण और अर्थगत संशोधन की सम्भावना प्रस्तुत की जाती है।[30]

फिर भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पातञ्जल रचनाकार ने किस एक बौद्ध ग्रन्थ को सामने रखकर यह पद

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

ग्रहण किया।

अतः अधिक प्रमाणसंगत निष्कर्ष है— बौद्ध पूर्वरूप, सम्भावित ग्रहण और पातञ्जल पुनर्व्याख्या।[31]

19.गांधारी बौद्ध साहित्य का प्रमाण-मूल्य

गांधारी बौद्ध पाण्डुलिपियाँ भारतीय बौद्ध साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वे उत्तर-पश्चिम भारत की प्राचीन बौद्ध पाठ-संस्कृति और उसके व्यापक संचरण को समझने में सहायता करती हैं।

इनका सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण यह है कि प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य केवल वर्तमान पालि अथवा बाद के संस्कृत ग्रन्थों तक सीमित नहीं था। बौद्ध पाठ अलग भाषिक क्षेत्रों में संचारित हो रहे थे।

किन्तु इस प्रमाण की सीमा स्पष्ट रखनी चाहिए। किसी गांधारी पाण्डुलिपि का प्राचीन होना अपने-आप यह सिद्ध नहीं करता कि पातञ्जल प्राणायाम, प्रत्याहार अथवा धारणा उसी पाण्डुलिपि से ग्रहण किए गए।

ऐसे निष्कर्ष के लिए सम्बन्धित गांधारी पाठ में विशिष्ट समान अवधारणा का प्रमाण आवश्यक होगा।

अतः गांधारी साक्ष्य का उपयोग बौद्ध साहित्य की बहुभाषिक प्राचीनता और प्रारम्भिक पाण्डुलिपीय संचरण के लिए करना अधिक उचित है।

20.चीनी आगम : स्वतंत्र संप्रेषण-परम्पराओं का साक्ष्य

चीनी आगम बौद्ध अध्ययन के लिए विशेष महत्त्व रखते हैं। उन्हें केवल वर्तमान पालि ग्रन्थों की चीनी प्रतिलिपि के रूप में नहीं देखना चाहिए। अनेक चीनी आगम अलग भारतीय निकाय–आगम परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

महाचत्तारीसक-सुत्त का चीनी समानान्तर *मध्यम-आगम* 189 इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। पालि, संस्कृत, चीनी और तिब्बती पाठों के तुलनात्मक अध्ययन से साझा आधार के साथ वास्तविक पाठभेद भी सामने आते हैं।[3]

इसका शोध-पद्धति पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। किसी वर्तमान पालि अंश को केवल इसलिए सबसे प्राचीन नहीं माना जा सकता कि वह पालि निकाय में संरक्षित है। समानान्तर पाठों की तुलना आवश्यक है।

इसी प्रकार MN 10 के साथ चीनी *मध्यम-आगम* 98 स्मृत्युपस्थान की दूसरी संप्रेषण-परम्परा प्रस्तुत करता है।[18]

अतः चीनी साक्ष्य दो कार्य करता है। वह साझा बौद्ध साधनात्मक परम्परा को पुष्ट करता है और साथ ही पाठीय विकास को भी सामने लाता है।

21.तिब्बती परम्परा का प्रमाण-मूल्य

तिब्बती बौद्ध संग्रहों ने अनेक भारतीय बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों को अनुवाद के माध्यम से संरक्षित किया है। योगाचार, अभिधर्म और महायान के अध्ययन में इनका विशेष महत्व है।

जहाँ भारतीय संस्कृत मूल पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है, वहाँ तिब्बती अनुवाद पाठ-पुनर्निर्माण में सहायक हो सकता है।

किन्तु तिब्बती अनुवाद की तिथि और भारतीय मूल ग्रन्थ की तिथि अलग प्रश्न हैं। किसी ग्रन्थ का बाद का तिब्बती अनुवाद यह सिद्ध नहीं करता कि भारतीय मूल उसी समय रचा गया था।

अतः तिब्बती पाठ को संप्रेषण-साक्ष्य माना जाना चाहिए। मूल भारतीय पाठ की प्राचीनता के लिए स्वतंत्र ऐतिहासिक और पाठालोचनात्मक प्रमाण आवश्यक हैं।

22.बौद्ध अनात्म और पातञ्जल पुरुष

बौद्ध दर्शन में अनात्म मूलभूत सिद्धान्त है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान में किसी स्थायी, स्वतंत्र और

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

अपरिवर्तनीय आत्मतत्त्व को स्थापित नहीं किया जाता।

इस कारण बौद्ध ध्यान की अंतिम उपलब्धि किसी शाश्वत पुरुष को खोज लेना नहीं है।

पातञ्जल योग में इसके विपरीत पुरुष चित्त और प्रकृति से भिन्न द्रष्टा है। योग की अंतिम दिशा पुरुष और प्रकृति के निर्णायक विवेक की ओर जाती है।

यही दोनों परम्पराओं का सबसे गहरा तत्त्वमीमांसात्मक वैसादृश्य है।

ध्यान, समाधि, निरोध और संस्कार की भाषा में समानताएँ मिलने पर भी अनात्म और पुरुष का अन्तर दोनों मुक्ति-दर्शनों को अलग करता है।

23.ईश्वर और ईश्वरप्रणिधान

बौद्ध ग्रन्थों में देवताओं, ब्रह्मा और शक्र का उल्लेख मिलता है। किन्तु देवताओं का अस्तित्व स्वीकार करना पातञ्जल पुरुषविशेष ईश्वर को मुक्तिमार्ग की आवश्यक शर्त मानने के समान नहीं है।

पातञ्जल *योगसूत्र* 1.24 कहता है—

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।"[32]

पातञ्जल ईश्वर एक पुरुषविशेष है। ईश्वरप्रणिधान साधना में भी महत्वपूर्ण है।

बुद्धानुस्मृति, बुद्ध-शरण अथवा त्रिरत्न-शरण को इस ईश्वरप्रणिधान का समानार्थक नहीं कहा जा सकता।

अतः ईश्वर का प्रश्न दोनों परम्पराओं के बीच वास्तविक और निर्णायक वैसादृश्य है।

24.निर्वाण और कैवल्य

बौद्ध साधना का अंतिम लक्ष्य निर्वाण है। निर्वाण तृष्णा, क्लेश और दुःख के निरोध से सम्बन्धित है। इसे अनात्म और प्रतीत्यसमुत्पाद की पृष्ठभूमि में समझना आवश्यक है।

पातञ्जल योग का अंतिम लक्ष्य कैवल्य है। *योगसूत्र* 4.34 में गुणों के प्रतिप्रसव और चितिशक्ति की स्वरूपप्रतिष्ठा के रूप में कैवल्य का विवेचन मिलता है।[32]

दोनों में संसारिक बन्धन से मुक्ति का व्यापक कार्यगत सादृश्य है।

किन्तु निर्वाण और कैवल्य एक ही तत्त्वमीमांसात्मक अवस्था नहीं हैं। निर्वाण को कैवल्य का बौद्ध नाम अथवा कैवल्य को निर्वाण का पातञ्जल नाम कहना दोनों परम्पराओं की अपनी दार्शनिक संरचना की उपेक्षा करेगा।

25.समेकित सादृश्यात्मक अध्ययन

- प्रथम सादृश्य नैतिक अनुशासन में है। बौद्ध शील और पातञ्जल यम साधना से पहले व्यवहार को अनुशासित करते हैं।
- दूसरा सादृश्य मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा में है। चारों मानसिक भावनाओं का दोनों परम्पराओं में समूह रूप में मिलना उल्लेखनीय है।
- तीसरा सादृश्य ध्यानोपयोगी शरीर में है। बौद्ध ध्यान-सूत्र शरीर को सीधा रखकर बैठने की बात करता है। पातञ्जल योग स्थिर और सुखद आसन की बात करता है।
- चौथा सादृश्य श्वास-साधना में है। बौद्ध आनापानसति और पातञ्जल प्राणायाम दोनों श्वास को मानसिक साधना से जोड़ते हैं।
- पाँचवाँ सादृश्य इन्द्रिय-अनुशासन में है। बौद्ध इन्द्रियसंवर और पातञ्जल प्रत्याहार बाह्य विषयों द्वारा चित्त के

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

अनियन्त्रित विचलन को कम करते हैं।

- छठा सादृश्य मानसिक स्थिरता में है। बौद्ध एकाग्रता और शमथ तथा पातञ्जल धारणा चित्त को स्थिर करने की समस्या को सम्बोधित करते हैं।
- सातवाँ सादृश्य ध्यान की क्रमिक गहराई में है। बौद्ध झान और पातञ्जल ध्यान–समाधि साधारण विक्षिप्त मानसिक अवस्था से उच्चतर एकाग्र अवस्था की ओर गति करते हैं।
- आठवाँ सादृश्य समाधि में है। दोनों परम्पराएँ समाधि को उच्च साधनात्मक अवस्था मानती हैं।
- नवाँ सादृश्य मुक्तिकारी ज्ञान में है। बौद्ध प्रज्ञा और पातञ्जल विवेकख्याति दोनों यह दिखाते हैं कि केवल एकाग्रता पर्याप्त नहीं है।
- दसवाँ सादृश्य मानसिक बन्धन के कारणों में है। अविद्या, राग और द्वेष दोनों परम्पराओं में महत्वपूर्ण हैं।
- ग्यारहवाँ सादृश्य संस्कार और कर्मफल की निरन्तरता की समस्या में है। दोनों परम्पराएँ पूर्व मानसिक प्रवृत्तियों और कर्मों के भविष्य पर प्रभाव की व्याख्या करती हैं।

इन समानताओं से स्पष्ट है कि दोनों परम्पराएँ व्यापक भारतीय साधनात्मक और दार्शनिक संसार का हिस्सा थीं। किन्तु प्रत्येक समानता को एक ही ऐतिहासिक कारण से उत्पन्न मानना उचित नहीं है।

26.समेकित वैसादृश्यात्मक अध्ययन

- प्रथम वैसादृश्य दोनों आठ-अङ्गीय मार्गों की वास्तविक सामग्री में है। संख्या समान है, लेकिन अङ्ग समान नहीं हैं।
- दूसरा वैसादृश्य सम्यक् स्मृति में है। बौद्ध मार्ग में स्मृति स्वतंत्र अङ्ग है। पातञ्जल अष्टाङ्ग में वह स्वतंत्र अङ्ग नहीं है।
- तीसरा वैसादृश्य श्वास-साधना में है। आनापानसति स्मृतिपूर्वक श्वास-अनुभूति और शमन पर आधारित है। प्राणायाम श्वास-नियमन की अलग संरचना प्रस्तुत करता है।
- चौथा वैसादृश्य इन्द्रियसंवर और प्रत्याहार की तकनीकी व्याख्या में है। दोनों का उद्देश्य निकट है, लेकिन प्रक्रिया समान नहीं है।
- पाँचवाँ वैसादृश्य ध्यान-वर्गीकरण में है। चार झान और धारणा–ध्यान–समाधि समान क्रम नहीं हैं।
- छठा वैसादृश्य प्रज्ञा और विवेकख्याति में है। दोनों मुक्तिकारी ज्ञान हैं, लेकिन उनके ज्ञान का विषय अलग है।
- सातवाँ वैसादृश्य निरोध में है। दुःखनिरोध और चित्तवृत्तिनिरोध को एक तकनीकी अवधारणा नहीं कहा जा सकता।
- आठवाँ वैसादृश्य अनात्म और पुरुष में है। यह दोनों परम्पराओं की तत्त्वमीमांसा को मूलतः अलग करता है।
- नवाँ वैसादृश्य ईश्वर में है। प्रारम्भिक बौद्ध मुक्ति-पथ पातञ्जल पुरुषविशेष ईश्वर को आवश्यक नहीं मानता।
- दसवाँ वैसादृश्य निर्वाण और कैवल्य में है। दोनों मुक्ति-संकल्पनाएँ हैं, लेकिन उनका दार्शनिक अर्थ अलग है।
- ग्यारहवाँ वैसादृश्य बोधिसत्त्व-आदर्श और कैवल्य में है। महायान बोधिसत्त्व की उच्च साधना सर्वसत्त्वहित से जुड़ती है। पातञ्जल कैवल्य की संरचना पुरुष के स्वतंत्रत्व पर केन्द्रित है।

अतः दोनों परम्पराओं में साधनात्मक निकटता और तत्त्वमीमांसात्मक दूरी एक साथ विद्यमान है।

27.तुलनात्मक ऐतिहासिक प्रतिमान

इस अध्ययन के आधार पर बौद्ध–पातञ्जल समानताओं को पाँच स्तरों में समझा जा सकता है।

- पहला स्तर साझा श्रमण परिवेश है। अहिंसा, संयम और ध्यान जैसी व्यापक अवधारणाओं को केवल एक परम्परा की निजी सम्पत्ति मानना कठिन है।
- दूसरा स्तर बौद्ध पूर्वरूप है। जहाँ कोई साधना प्रारम्भिक बौद्ध स्रोत में स्पष्ट रूप से प्रमाणित है और पातञ्जल व्यवस्था

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

बाद में तुलनीय रूप प्रस्तुत करती है, वहाँ बौद्ध पूर्वरूप कहा जा सकता है। लेकिन पूर्वरूप का अर्थ प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं है।

- तीसरा स्तर स्वतंत्र समानान्तर विकास है। दो परम्पराएँ समान साधनात्मक समस्या का स्वतंत्र समाधान विकसित कर सकती हैं।
- चौथा स्तर अन्तर्दार्शनिक सम्पर्क है। समान शब्दावली, समान समस्या और तुलनीय समाधान ऐसे ऐतिहासिक काल में मिलें जहाँ विभिन्न दार्शनिक समुदायों के बीच सम्पर्क सम्भव था, तो वैचारिक सम्पर्क की सम्भावना पर विचार किया जा सकता है।
- पाँचवाँ स्तर चयनात्मक ग्रहण और पुनर्व्याख्या है। धर्ममेघ जैसे अधिक विशिष्ट उदाहरण इस श्रेणी में गंभीरता से विचारणीय हैं।

इस पाँच-स्तरीय प्रतिमान से 'सब कुछ ग्रहण है' और 'कोई सम्बन्ध नहीं है'—इन दोनों अतियों से बचा जा सकता है।

शोध-निष्कर्ष (Research Findings)

◊ प्रथम, प्रारम्भिक बौद्ध प्राथमिक स्रोत नैतिक अनुशासन, इन्द्रियसंवर, श्वास-स्मृति, स्मृत्युपस्थान, ज्ञान और समाधि की स्वतंत्र और सुविकसित साधना-परम्परा प्रमाणित करते हैं।

◊ द्वितीय, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग पातञ्जल अष्टाङ्गयोग से पूर्ववर्ती बौद्ध आठ-अङ्गीय मुक्ति-रचना का महत्वपूर्ण प्रमाण है। किन्तु दोनों के वास्तविक आठ अङ्ग अलग हैं। इसलिए संख्या आठ अपने-आप प्रत्यक्ष ग्रहण सिद्ध नहीं करती।

◊ तृतीय, बौद्ध शील और पातञ्जल यम में प्रबल नैतिक सादृश्य है। अहिंसा–प्राणातिपात-विरति, अस्तेय–अदत्तादान-विरति और सत्य–मिथ्यावचन-विरति विशेष रूप से तुलनीय हैं। फिर भी दोनों पाँच-सदस्यीय सूचियाँ समान नहीं हैं।

◊ चतुर्थ, मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का दोनों परम्पराओं में समूह रूप में मिलना सामान्य नैतिक समानता से अधिक विशिष्ट है। फिर भी बौद्ध ब्रह्मविहार और पातञ्जल चित्तप्रसादन का साधनात्मक स्थान अलग है।

◊ पञ्चम, बौद्ध ध्यानोपयोगी आसन पातञ्जल आसन से पहले स्थिर बैठने की साधनात्मक आवश्यकता का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है। किन्तु इसे बाद की आसन-प्रधान योग-पद्धति से नहीं मिलाना चाहिए।

◊ षष्ठ, आनापानसति भारतीय श्वास-केन्द्रित ध्यान-साधना का महत्वपूर्ण प्रारम्भिक बौद्ध प्रमाण है। इसका प्राणायाम से कार्यगत सादृश्य है, लेकिन दोनों तकनीकी रूप से समान नहीं हैं।

◊ सप्तम, बौद्ध इन्द्रियसंवर और पातञ्जल प्रत्याहार समान साधनात्मक समस्या को सम्बोधित करते हैं। लेकिन विषय-संपर्क के प्रति प्रतिक्रिया का बौद्ध ढाँचा और इन्द्रियों के विषय-वियोग का पातञ्जल ढाँचा अलग हैं।

◊ अष्टम, सम्यक् स्मृति की स्वतंत्र स्थिति दोनों आठ-अङ्गीय व्यवस्थाओं के बीच एक निर्णायक संरचनात्मक अन्तर है।

◊ नवम, चार ज्ञानों का सुविकसित बौद्ध वर्णन क्रमिक ध्यान-अवशोषण की स्वतंत्र बौद्ध परम्परा का प्रमाण है। इसे पातञ्जल धारणा–ध्यान–समाधि के साथ एक-से-एक नहीं मिलाया जा सकता।

◊ दशम, बौद्ध सम्यक् समाधि और पातञ्जल समाधि में उच्च मानसिक एकाग्रता का कार्यगत साम्य है। लेकिन दोनों अलग मुक्तिशास्त्रीय प्रणालियों में स्थित हैं।

◊ एकादश, बौद्ध प्रज्ञा और पातञ्जल विवेकख्याति दोनों मुक्ति के लिए ज्ञान को आवश्यक मानते हैं। किन्तु बौद्ध प्रज्ञा अनात्म और प्रतीत्यसमुत्पाद की ओर तथा पातञ्जल विवेकख्याति पुरुष–प्रकृति भेद की ओर जाती है।

◊ द्वादश, निरोध पद दोनों परम्पराओं में महत्वपूर्ण है, लेकिन बौद्ध दुःखनिरोध, निरोधसमापत्ति और पातञ्जल चित्तवृत्तिनिरोध को एक नहीं किया जा सकता।

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

- ◊ त्रयोदश, अविद्या, राग और द्वेष दोनों परम्पराओं में मानसिक बन्धन के कारण हैं। फिर भी अविद्या की अंतिम दार्शनिक व्याख्या अलग है।
- ◊ चतुर्दश, *श्रावकभूमि* और व्यापक *योगाचारभूमि* यह प्रमाणित करते हैं कि बौद्ध परम्परा स्वयं 'योग' की व्यवस्थित साधनात्मक भाषा का प्रयोग करती थी।
- ◊ पञ्चदश, गांधारी पाण्डुलिपियाँ प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य की बहुभाषिक पाठ-संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रमाण हैं। किन्तु उनकी प्राचीनता को किसी विशिष्ट पातञ्जल अवधारणा के ग्रहण का स्वतः प्रमाण नहीं बनाया जा सकता।
- ◊ षोडश, चीनी आगम बौद्ध साधना की अलग संप्रेषण-परम्पराओं के महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं। पालि और चीनी समानान्तरों की सहमति साझा पुराने आधार की सम्भावना को मजबूत करती है, जबकि उनके भेद पाठ-विकास को दिखाते हैं।
- ◊ सप्तदश, तिब्बती अनुवाद भारतीय बौद्ध ग्रन्थों के महत्वपूर्ण संप्रेषण-साक्ष्य हैं। किन्तु अनुवाद की तिथि को भारतीय मूल ग्रन्थ की रचना-तिथि नहीं माना जा सकता।
- ◊ अष्टादश, बौद्ध बीज–आलयविज्ञान और पातञ्जल संस्कार–कर्माशय समान कारणात्मक समस्या से जुड़े हैं, लेकिन उन्हें समान दार्शनिक तत्त्व नहीं माना जा सकता।
- ◊ एकोनविंश, धर्ममेघ इस अध्ययन के सबसे मजबूत विशिष्ट अन्तर्पाठीय उदाहरणों में से एक है। बौद्ध महायान–योगाचार में इसका विस्तृत विकास और पातञ्जल पाठ में परिवर्तित प्रयोग चयनात्मक ग्रहण तथा पुनर्व्याख्या की सम्भावना को मजबूत करता है।
- ◊ विंश, बौद्ध अनात्म और पातञ्जल पुरुष दोनों परम्पराओं के बीच सबसे गहरा तत्त्वमीमांसात्मक अन्तर है।
- ◊ एकविंश, बौद्ध ईश्वर-स्वतंत्र मुक्तिमार्ग और पातञ्जल ईश्वरप्रणिधान को समान नहीं माना जा सकता।
- ◊ द्वाविंश, निर्वाण और कैवल्य दोनों मुक्ति-संकल्पनाएँ हैं, लेकिन उनका तत्त्वमीमांसात्मक अर्थ अलग है।
- ◊ त्रयोविंश, कालगत पूर्वता अकेले ग्रहण सिद्ध नहीं करती। सम्भावित ग्रहण के लिए विशिष्ट शब्दावली, अर्थ, संरचना, ऐतिहासिक सम्पर्क और अर्थगत परिवर्तन का संयुक्त अध्ययन आवश्यक है।
- ◊ चतुर्विंश, बौद्ध और पातञ्जल परम्पराओं का सम्बन्ध एक ही व्याख्यात्मक सूत्र से नहीं समझा जा सकता। अलग-अलग मामलों में साझा श्रमण परिवेश, स्वतंत्र विकास, बौद्ध पूर्वरूप, वैचारिक सम्पर्क, चयनात्मक ग्रहण और पुनर्व्याख्या की अलग सम्भावनाएँ हैं।

उपसंहार

देशी और वैदेशिक बौद्ध प्राथमिक स्रोतों को अग्रस्थान देकर पातञ्जल अष्टाङ्गयोग का अध्ययन करने पर भारतीय योग-साधना का इतिहास अधिक व्यापक और अधिक जटिल दिखाई देता है। शील, इन्द्रियसंवर, स्मृति, आनापानसति, झान, समाधि और प्रज्ञा जैसी साधनाएँ प्रारम्भिक बौद्ध निकाय–आगम परम्परा में सुविकसित रूप में उपलब्ध हैं। इसलिए भारतीय ध्यान और योग के इतिहास को केवल पातञ्जल *योगसूत्र* से आरम्भ करना ऐतिहासिक रूप से पर्याप्त नहीं है।

चीनी आगम इस निष्कर्ष को अधिक व्यापक बनाते हैं। पालि और चीनी समानान्तरों में अनेक मूल साधनात्मक संरचनाएँ साझा हैं। साथ ही वास्तविक पाठभेद भी हैं। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध साधना का प्रारम्भिक इतिहास बहु-पाठीय था। किसी एक वर्तमान पाठ को बिना तुलनात्मक परीक्षण के सम्पूर्ण प्रारम्भिक परम्परा का अक्षरशः प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता।

गांधारी पाण्डुलिपियाँ इस बहुभाषिकता को भौतिक आधार देती हैं। वे दिखाती हैं कि बौद्ध साहित्य उत्तर-पश्चिम भारत सहित विभिन्न क्षेत्रों में अलग भाषिक रूपों में संचारित हो रहा था। लेकिन उनकी प्राचीनता को प्रत्येक पातञ्जल अवधारणा के प्रत्यक्ष बौद्ध स्रोत का प्रमाण बनाना उचित नहीं है।

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

बौद्ध-संस्कृत *श्रावकभूमि, बोधिसत्त्वभूमि* और व्यापक *योगाचारभूमि* एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य सामने लाते हैं। बौद्ध परम्परा स्वयं 'योग' की भाषा में व्यवस्थित साधना विकसित करती थी। इसलिए 'योग' को केवल पातञ्जल पारिभाषिक सम्पत्ति के रूप में देखना ऐतिहासिक रूप से अपर्याप्त है।

इन बौद्ध स्रोतों के सामने पातञ्जल अष्टाङ्गयोग रखने पर व्यापक साधनात्मक निकटता दिखाई देती है। शील और यम, ध्यानोपयोगी आसन और आसन, आनापानसति और प्राणायाम, इन्द्रियसंवर और प्रत्याहार, एकाग्रता और धारणा, ज्ञान और ध्यान तथा सम्यक् समाधि और समाधि अलग-अलग स्तरों पर तुलनीय हैं।

किन्तु इन समानताओं की सीमा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। बौद्ध सम्यक् स्मृति का पातञ्जल आठ अङ्गों में स्वतंत्र समकक्ष नहीं है। आनापानसति प्राणायाम नहीं है। चार ज्ञान धारणा–ध्यान–समाधि का दूसरा नाम नहीं हैं। दुःखनिरोध चित्तवृत्तिनिरोध का समानार्थक नहीं है। आलयविज्ञान कर्माशय अथवा पुरुष नहीं है।

सबसे गहरा अन्तर मुक्ति के दार्शनिक आधार में है। बौद्ध प्रज्ञा अनित्य, दुःख, अनात्म और प्रतीत्यसमुत्पाद की दिशा में जाती है। पातञ्जल विवेकख्याति पुरुष और प्रकृति की भिन्नता की दिशा में जाती है। बौद्ध निर्वाण को पुरुष के कैवल्य के रूप में समझना इसलिए उचित नहीं है।

ईश्वर का प्रश्न इस अन्तर को और स्पष्ट करता है। बौद्ध साहित्य में देवताओं का अस्तित्व और पातञ्जल पुरुषविशेष ईश्वर समान अवधारणाएँ नहीं हैं। बुद्धानुस्मृति अथवा त्रिशरण को ईश्वरप्रणिधान के समान कहना भी उचित नहीं है।

धर्ममेघ इस व्यापक तुलना में विशेष महत्व रखता है। सामान्य 'ध्यान' अथवा 'समाधि' की अपेक्षा यह अधिक विशिष्ट पद और रूपक है। बौद्ध महायान–योगाचार में धर्ममेघ का विस्तृत विकास और पातञ्जल ग्रन्थ में उसका परिवर्तित प्रयोग चयनात्मक ग्रहण और पुनर्व्याख्या की सम्भावना को गंभीर बनाता है। फिर भी उपलब्ध प्रमाण किसी एक प्रत्यक्ष बौद्ध पाठ से 'नकल' सिद्ध नहीं करते।

अतः प्रस्तुत शोध का मौलिक निष्कर्ष यह है कि "बौद्ध योगाचार एवं अष्टाङ्गयोग : तत्त्व और व्यवहार" का ऐतिहासिक सम्बन्ध न पूर्ण अभिन्नता का है और न पूर्ण पृथकता का। इसे समझने के लिए बौद्ध साधनात्मक पूर्वभूमि, साझा श्रमण परिवेश, स्वतंत्र समानान्तर विकास, अन्तर्दार्शनिक संवाद, चयनात्मक ग्रहण और तत्त्वमीमांसात्मक पुनर्व्याख्या—इन सभी को अलग-अलग प्रमाण-स्तरों पर जाँचना आवश्यक है।

इस अध्ययन की महत्वपूर्ण पद्धतिगत उपलब्धि यह है कि पातञ्जल अष्टाङ्गयोग को पहले रखकर बौद्ध समानताएँ खोजने के स्थान पर बौद्ध प्राथमिक स्रोतों को पहले रखा गया है। इससे बौद्ध साधना अपनी स्वतंत्र ऐतिहासिक और दार्शनिक संरचना में दिखाई देती है। उसके बाद की गई पातञ्जल तुलना अधिक संतुलित और प्रमाणाधारित हो जाती है।

इस प्रकार भारतीय योग का इतिहास किसी एक सम्प्रदाय की एकरेखीय उपलब्धि के रूप में नहीं, बल्कि अनेक श्रमण और दार्शनिक परम्पराओं के बीच दीर्घकालीन संवाद, समानान्तर विकास, अन्तःक्रिया और पुनर्व्याख्या की जटिल प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक प्रमाणसंगत है।

Endnotes

1. प्रारम्भिक बौद्ध योग-साधना की मूल संरचनाओं के लिए *सामञ्ञफल-सुत्त* (Sāmaññaphala-sutta), DN 2, DN I, पृ. 47 से आगे; *सतिपट्ठान-सुत्त* (Satipaṭṭhāna-sutta), MN 10, MN I, पृ. 55–63; *महाचत्तारीसक-सुत्त* (Mahācattārīsaka-sutta), MN 117, MN III, पृ. 71–78; तथा *आनापानसति-सुत्त* (Ānāpānasati-sutta), MN 118, MN III, पृ. 78–88 देखें।
2. कालगत पूर्वता और प्रत्यक्ष ग्रहण को अलग रखना इस अध्ययन की मूल पद्धतिगत शर्त है। किसी साधनात्मक धारणा का बौद्ध ग्रन्थ में पहले उपलब्ध होना उस धारणा की बौद्ध पाठ-परम्परा में पूर्वता सिद्ध कर सकता है, लेकिन इससे अपने-आप प्रत्यक्ष पातञ्जल ग्रहण सिद्ध नहीं होता।
3. *महाचत्तारीसक-सुत्त* (Mahācattārīsaka-sutta), MN 117 का पालि पाठ MN III, पृ. 71.8–78.18 में है। इसका चीनी

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

समानान्तर *मध्यम-आगम* (Madhyama-āgama) 189, 《聖道經》, तैशो (Taishō) T 26.189, T I, 735b–736c में है। तिब्बती समानान्तर देर्गे (Derge) D 4094, nyu 43b7–47b4 तथा पेकिंग (Peking) Q 5595, thu 83a7–87b2 में मिलता है।

4. O'Brien-Kop, K. (2020), pp. 605–635. अध्ययन में बौद्ध योगाचार और प्रारम्भिक महायान में धर्ममेघ के विकसित प्रयोग तथा पातञ्जल धर्ममेघसमाधि के अर्थगत परिवर्तन की तुलना की गई है।
5. *Majjhima Nikāya* 117, *Mahācattārīsaka-sutta*, MN III, पृ. 71–78; आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की विस्तृत व्याख्या।
6. वही; सम्यक् दृष्टि, सम्यक् प्रयास, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि के परस्पर सम्बन्ध का प्रसंग।
7. Anālayo (2011), *The Mahācattārīsaka-sutta in the light of its parallels*, pp. 59–93. चीनी और तिब्बती समानान्तरों की तुलना पालि पाठ के आन्तरिक पाठ-विकास को समझने में सहायक है।
8. Patañjali, *Yogasūtra*, 2.29.
9. बौद्ध नैतिक अनुशासन के विस्तृत सन्दर्भ के लिए *Sāmaññaphala-sutta*, DN 2, DN I, पृ. 47 से आगे देखें।
10. Patañjali, *Yogasūtra*, 2.30–31.
11. *Sutta-nipāta* 1.8, *Karaṇīyametta-sutta*; "sukhino vā khemino hontu…" तथा "santussako ca subharo ca" सम्बन्धित पाठ्यांश।
12. Patañjali, *Yogasūtra*, 2.32. विशेषतः ईश्वरप्रणिधान को बौद्ध बुद्धानुस्मृति अथवा त्रिशरण का समानार्थक न माना जाए।
13. *Majjhima Nikāya* 118, *Ānāpānasati-sutta*, MN III, पृ. 78–88; "pallaṅkaṃ ābhujitvā, ujuṃ kāyaṃ paṇidhāya…" ध्यानोपयोगी बैठने का मानक सूत्र है।
14. *Majjhima Nikāya* 118, MN III, पृ. 78–88; दीर्घ श्वास, लघु श्वास, सम्पूर्ण शरीर और शारीरिक संस्कार के शमन का क्रम।
15. Patañjali, *Yogasūtra*, 2.49–50. आनापानसति और प्राणायाम में श्वास-संबंधी कार्यगत साम्य है, लेकिन दोनों की तकनीकी संरचना समान नहीं है।
16. *Dīgha Nikāya* 2, *Sāmaññaphala-sutta*, DN I, पृ. 47 से आगे; "cakkhunā rūpaṃ disvā na nimittaggāhī hoti nānubyañjanaggāhī…" इन्द्रियसंवर का महत्वपूर्ण पाठ्यांश है। इसके चीनी समानान्तरों में DA 27, T 1.27, T I, 107a20 से सम्बन्धित सामग्री सूचीबद्ध है।
17. Patañjali, *Yogasūtra*, 2.54–55.
18. *Majjhima Nikāya* 10, *Satipaṭṭhāna-sutta*, MN I, पृ. 55.27–63.21; चीनी समानान्तर *Madhyama-āgama* 98, 《念處經》, T I, 582b7–584b28. विस्तृत स्मृत्युपस्थान के लिए *Dīgha Nikāya* 22, DN II, पृ. 290–315 भी देखें।
19. Patañjali, *Yogasūtra*, 2.29. स्मृति को पातञ्जल मनोविज्ञान में स्वीकार किया गया है, लेकिन अष्टाङ्गयोग में वह स्वतंत्र अङ्ग नहीं है।
20. *Dīgha Nikāya* 2, *Sāmaññaphala-sutta*; चार ज्ञानों का क्रमिक वर्णन।
21. Patañjali, *Yogasūtra*, 3.1–3.3: "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"; "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"; "तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।"
22. *Majjhima Nikāya* 117, MN III, पृ. 71.8–78.18; चीनी समानान्तर MĀ 189, T 26.189, T I, 735b–736c; तिब्बती समानान्तर D 4094, nyu 43b7–47b4 / Q 5595, thu 83a7–87b2.
23. Patañjali, *Yogasūtra*, 1.2. बौद्ध दुःखनिरोध, बौद्ध निरोधसमापत्ति और पातञ्जल चित्तवृत्तिनिरोध के तकनीकी अर्थों को पृथक् रखना आवश्यक है।
24. Patañjali, *Yogasūtra*, 2.3. बौद्ध अविद्या, राग और द्वेष से कार्यगत तुलना सम्भव है, लेकिन दोनों परम्पराओं की तत्त्वमीमांसात्मक पृष्ठभूमि अलग है।
25. Śukla, K. (Ed.). (1973). *Śrāvakabhūmi of Ācārya Asaṅga*. K. P. Jayaswal Research Institute. संस्कृत पाठ में योग-साधना सम्बन्धी विस्तृत सामग्री उपलब्ध है।

MEDHĀMANTHAN ISSN : 3139-7840
A Premier Peer-Reviewed, Open-Access, Bimonthly, International Online Research Journal
Dedicated to the fields of Arts, Humanities and Social Sciences
Adhering to UGC Guidelines and Quality Mandates
Volume: 1, Issue: 3 (SEP - OCT) 2026

26. *श्रावकभूमि* के डिजिटल संस्कृत पाठ का आधार शुक्ल (1973) का संस्करण है। निर्णायक पाठालोचन के लिए मुद्रित संस्कृत संस्करण और उपलब्ध तिब्बती तथा चीनी साक्ष्यों से पुनर्मिलान आवश्यक है।
27. *Bodhisattvabhūmi*, 2.4.12, Wogihara संस्करण, पृ. 354–355. यहाँ सद्धर्मवृष्टि, क्लेश-रज के शमन और कुशलमूल-शस्य की वृद्धि के आधार पर धर्ममेघ का विकसित रूपक मिलता है।
28. Patañjali, *Yogasūtra*, 4.29.
29. O'Brien-Kop, K. (2020). Dharmamegha in yoga and yogācāra: The revision of a superlative metaphor. *Journal of Indian Philosophy, 48*, 605–635.
30. धर्ममेघ के कालक्रम में *Bodhisattvabhūmi*, *Saṃdhinirmocanasūtra* और *Daśabhūmikasūtra* जैसे बौद्ध स्रोत महत्वपूर्ण हैं। उपलब्ध प्रमाण सम्भावित ग्रहण और पुनर्व्याख्या पर विचार की अनुमति देते हैं, लेकिन किसी एक पाठ से प्रत्यक्ष प्रतिलिपि सिद्ध नहीं करते।
31. Patañjali, *Yogasūtra*, 1.24—"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।" बुद्धानुस्मृति अथवा त्रिशरण को इस ईश्वरप्रणिधान का समानार्थक नहीं माना जाना चाहिए।
32. Patañjali, *Yogasūtra*, 4.34—"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।" बौद्ध निर्वाण और पातञ्जल कैवल्य दोनों मुक्तिशास्त्रीय अवधारणाएँ हैं, लेकिन उनकी तत्त्वमीमांसा भिन्न है।

Bibliography

- Anālayo, B. (2011). *A comparative study of the Majjhima-nikāya*. Dharma Drum Publishing Corporation.
- Anālayo, B. (2011). The Mahācattārīsaka-sutta in the light of its parallels: Tracing the beginnings of Abhidharmic thought. *Journal of the Centre for Buddhist Studies, Sri Lanka, 8*, 59–93.
- Anālayo, B. (2013). *Perspectives on Satipaṭṭhāna*. Windhorse Publications.
- Anālayo, B. (2014). *The dawn of Abhidharma*. Hamburg University Press.
- Baums, S., & Glass, A. (n.d.). *Catalog and corpus of Gāndhārī texts*. University of Washington.
- Kragh, U. T. (Ed.). (2013). *The foundation for yoga practitioners: The Buddhist Yogācārabhūmi treatise and its adaptation in India, East Asia, and Tibet*. Department of South Asian Studies, Harvard University.
- O'Brien-Kop, K. (2020). Dharmamegha in yoga and yogācāra: The revision of a superlative metaphor. *Journal of Indian Philosophy, 48*, 605–635. https://doi.org/10.1007/s10781-020-09432-3
- Rhys Davids, T. W., & Carpenter, J. E. (Eds.). (1890–1911). *The Dīgha Nikāya* (Vols. 1–3). Pali Text Society.
- Salomon, R. (1999). *Ancient Buddhist scrolls from Gandhāra: The British Library Kharoṣṭhī fragments*. University of Washington Press.
- Salomon, R. (2018). *The Buddhist literature of ancient Gandhāra: An introduction with selected translations*. Wisdom Publications.
- Śukla, K. (Ed.). (1973). *Śrāvakabhūmi of Ācārya Asaṅga*. K. P. Jayaswal Research Institute.
- Trenckner, V., Chalmers, R., & Rhys Davids, C. A. F. (Eds.). (1888–1925). *The Majjhima Nikāya* (Vols. 1–3). Pali Text Society.
- Wogihara, U. (Ed.). (1930–1936). *Bodhisattvabhūmi: A statement of whole course of the Bodhisattva (being fifteenth section of Yogācārabhūmi)*. Seigo Kenkyūkai.